पहचान... अपने आप की

ब्रह्मसूत्र

आर्षविश्व
आचार्य कल्याणबोधि

एक शेर का बच्चा। अभी तो जन्म ही हुआ था, और किसी हेतु से अपने माता-पिता से वियुक्त हो गया। योगानुयोग उस समय कोई ग्वाला वहाँ बकरीयाँ चराने आया। शेर का बच्चा उस टोले में शामिल हो गया। बकरीयाँ चरती है, वैसे वो भी चरने लगा। बकरीयाँ जैसी आवाज़ करती है, वैसी वह भी करने लगा। बकरीयों की तरह वह भी घबराने लगा। जैसे जैसे दिन बीतते है, वैसे वैसे बच्चा बड़ा होता जाता है... पर शेर के रूप में बकरी ही।

एक दिन वह जंगल में चर रहा था। अकस्मात् उस के समक्ष एक शेर आ गया। बच्चा विस्मित हो कर देखता ही रह गया। उसका मन चकित बना। यह?.... यह तो मैं ही। एक ही पल, और दीर्घकालीन भ्रान्ति समझ में आ गयी। शेर की आँखे उसे कह रही है - 'मूर्ख! यह क्यों बकरी की तरह चारा चर रहा है? तू बकरी नहीं, तू तो शेर है शेर। तू इस तरह 'बें बें' कर रहा है! तुझे तो गर्जना करनी चाहिये। तू इस तरह उछल-कूद कर रहा है?... तुझे तो छलांग लगानी चाहिये। कितना नादान है तू, की अपने आप को ही नहीं पहचान रहा... और इसी हेतु इतनी करुणास्पद स्थिति में जी रहा है। बाहर नीकल इस टोले में से, और चल मेरे साथ।

सिंह ने एक जबरदस्त गर्जना की। जिसे सुनते ही बच्चे के मनोमंथन ने निर्णायक कक्षा को प्राप्त कर लिया। उसने भी प्रयास किया और सारा जंगल उस की गर्जना से गूंज उठा। बकरीयाँ कूद कूद कर गाँव की और भाग रही है और बच्चा, नहीं, अपितु सिंह छलांग लगा कर उसके 'वनराज' पद को प्राप्त कर रहा है, जिस पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार है।

शेर की बात समाप्त होती है, और हमारी शुरू होती है। वह बच्चा यानि हम ही। 'मैं शरीर हूँ' यह हमारा भ्रम है। 'मैं मर जाऊंगा' यह हमारा भ्रमजनित डर है। तुच्छ विषयो में प्रवृत्ति यह हमारी 'चारा चरने की चेष्टा' है। व्यर्थ प्रलाप एवं दुःख की अभिव्यक्ति करने की वृत्ति, वह 'बें बें' है। सामान्य हर्ष-शोक में चित्तक्षोभ, यह 'उछलकूद' है। इन सभी विडंबनाओ का मूल है अपने आप का अज्ञान। बच्चा तब तक ही बकरी है, जब तक उसने अपने सिंहस्वरूप को पहचाना नहीं है। आत्मा तब तक ही दुःखी है, जब तक उसने अपने ब्रह्मस्वरूप को पहचाना नहीं है। इसी लिये सर्व शास्त्रो व उपदेशो का तात्पर्य आत्मा को अपनी पहचान कराने में ही प्रतिष्ठित है। केवल एक बार आत्मा को उसके ब्रह्मस्वरूप की पहचान हो जाये, फिर उसका भ्रम,

डर, चारा, बैं बैं, उछल-कूद ... सब कुछ... छोडना नहीं पडेगा... किन्तु सहज रूप से छूट जायेगा।

श्रीबादरायणसूत्रित ब्रह्मसूत्र इसी तात्पर्य से ब्रह्मस्वरूप का दिग्दर्शन करा रहा है। अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥१॥ इस उपोद्घात से शुरू होते इस सूत्र में अति संक्षेप में गंभीर अभिप्राय के साथ आत्मा की पहचान कराने का प्रयास किया गया है। 'मैं कौन?' इस प्रश्न का जवाब जब तक भ्रमात्मक है, तब तक दुःख है। जब तक भ्रम है, तब तक भ्रमण है।

ब्रह्मसूत्र - शांकरभाष्य में भ्रम की सुंदर व्याख्या की गई है, - अध्यासो नाम अतस्मिंस्तद्बुद्धिः। जो जो नहीं है, उसे वह मानना, उसका नाम भ्रम। मैं शरीर नहीं। शरीर को 'मैं' मानना, उस का नाम भ्रम। इस भ्रम में से चार भ्रान्तिओ का जन्म होता है-

(१) बाह्यधर्मों में आत्माध्यास - पुत्र, पत्नी आदि सुखी/दुःखी हो, उससे मैं सुखी/दुःखी हूँ, ऐसी भ्रान्ति।

(२) देहधर्मों में आत्माध्यास - शरीर मोटा/दुर्बल/गोरा/काला/रोगी/नीरोगी हो, उससे मैं मोटा/दुर्बल/गोरा/काला/रोगी/नीरोगी हूँ, ऐसी भ्रान्ति।

(३) इन्द्रियधर्मों में आत्माध्यास - इन्द्रिय विकल हो, उससे मैं मूक/अंध/बधि. हूँ, ऐसी भ्रान्ति।

(४) चित्तधर्मों में आत्माध्यास - चित्तगत कामना/हर्ष/शोक आदि से मुझे कामना/हर्ष/शोक है, ऐसी भ्रान्ति।

आत्मा के समस्त दुःखो का मूल उपरोक्त भ्रान्तियो में निहित है। जब तक इन भ्रान्तिओ का अस्तित्व है, तब तक दुःखविनाश संभवित नहीं है। इन भ्रान्तिओ को दूर करने का एक मात्र उपाय आत्मज्ञान है अतः उपनिषदो का उपदेश है-

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो
मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ॥ बृहदारण्यकोपनिषद् २-४-५ ॥

कर्तव्य है आत्मदर्शन... आत्मश्रवण... आत्ममनन और आत्म-निदिध्यासन। शास्त्रोक्त ज्ञान और उस ज्ञान के अनुरूप आचरण से जब आत्मज्ञान आत्मा में परिणत होता है, तब आत्मा की अस्मिता में पूर्ण परिवर्तन आता है।

विज्ञातब्रह्मतत्त्वस्य यथापूर्वं न संसृतिः

जब तक देह है, तब तक आत्मज्ञानी भी संसार में होता है, किन्तु वह संसार पूर्वसंसार से अत्यन्त विपरीत होता है। पुत्रमृत्यु का शोक आत्महत्या तक का परिणाम लाये, यह अज्ञानी की दशा है, तो ऐसे समय पर केवल ऋणानुबंध के पूर्णविराम का दर्शन हो, यह आत्मज्ञानी की दशा है। दश करोड. रूपये का नुकशान सुनते ही हृदयरोग का हमला हो जाये, यह अज्ञानी की दशा है, और ऐसे अवसर पर 'अच्छा हुआ छूटी जंजाल' ऐसे उद्गार निकल पडे, यह

आत्मज्ञानी की दशा है। केन्सर का निदान जीते जी ही मार डाले, यह अज्ञानी की दशा है, और सारा शरीर केन्सर के कीटाणुओं से व्याप्त हो, तब केवल साक्षीभाव से रोग का नाटक देखना, यह आत्मज्ञानी की दशा है। ज्ञानसार के सुधावचन स्मृतिगोचर होते है-

परयन्नेव परद्रव्य - नाटकं प्रतिपाटकम् ।
भवचक्रपुरस्थोऽपि, नामूढ: परिखिद्यति ॥

संसारचक्र एक ऐसा शहर है, जिस के रस्ते रस्ते पर परद्रव्य का नाटक चल रहा है। शरीर, संपत्ति, घर, परिवार....यह सब कुछ परद्रव्य है। अज्ञानी उसमें सम्मिलित होता है, उससे लिप्त होता है, उसे अपना मानता है, और इसी लिये पल पल दुःखी होता है। ज्ञानी समझते हैं, कि इनमें से कुछ भी मेरा नहीं है। यह तो केवल एक नाटक है। कोई नाटक घंटो का होता है, तो कोई नाटक सालो का। पर नाटक याने नाटक। पर्दा गिरेगा, तब उसमें से कुछ भी नहीं होगा। प्रिय भी नहीं व अप्रिय भी नहीं। तो फिर किस के लिये राग-द्वेष कर के दुःखी होना। एक स्वप्न आँखे खुलने पर समाप्त होता है,.... एक स्वप्न आँखे बंद होने पर समाप्त होता है... स्वप्न तो स्वप्न ही।

कौन ? किस का ? वह भी कब तक ? ।
छोड सारी ममता, कोई तेरा नहीं ॥

आत्मज्ञानी न हसता है, न तो रोता है, यत: वह घटनाओं के साथ सम्मिलित नहीं होता। नाटक को वह नाटक ही समझता है, और स्वप्न को स्वप्न ही। अत: वह केवल प्रेक्षक बने रहता है। सर्व दुःखो का दायक है अंतर्भाव और परमानन्द का कन्द है साक्षीभाव। नित्यतृप्त: .... विज्ञानमानन्दं ब्रह्म... श्रुतिनिर्दिष्ट यह ब्रह्मस्वरूप आत्मा के इसी साक्षीभाव से उद्भूत होता है। निरूवमसुहसंगया .... आगमप्रतिपादित इस सिद्धस्वरूप का आधार यही साक्षीभाव है और इस साक्षीभाव का भी आधार है आत्मज्ञान। अध्यात्मसार में कहा है -

ज्ञाते ह्यात्मनि नो भूयो, ज्ञातव्यमवशिष्यते ।
अज्ञाते पुनरेतस्मिन्, ज्ञानमन्यन्निरर्थकम् ॥

जिसने आत्मज्ञान को प्राप्त कर लिया है, उसे और कोई भी ज्ञान प्राप्त करना बाकी नही है। और जिसने आत्मज्ञान प्राप्त नही किया, उसका अन्य सर्व ज्ञान व्यर्थ है। शिक्षण के परिप्रेक्ष्य में गांधीजीने जो बात की थी, वह यहाँ स्मर्तव्य है - गाँव की गलीयाँ परिचित नहीं, और ब्रिटन की नदीयाँ के नाम कंठस्थ कर चुका है।

बात मूर्ख छात्र की नहीं, हमारी है। जब तक आत्मा की पहचान नहीं हुइ, तब तक दुसरी सारी पहचान कलंकरूप है, और एक बार आत्मा की पहचान हो जाये. तब आत्मा आत्मगलो की

निरुपम समृद्धि में झूमने लगती है... परमानंद की इस अवस्था में उसे अन्य किसी भी पहचान में रुचि नहीं रहती है। जो मेरा नहीं, जिस से मुझे कोई काम नहीं, वह मेरे लिये है ही नहीं। 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'- की भूमिका कितनी दिव्य है।

ब्रह्मसूत्र के इस आशय का शांकरभाष्य सतत अनुसरण करता है। श्रुति-स्मृतियों का नवनीत प्रस्तुत करता है, और आत्मा को आत्मज्ञान के लिये प्रोत्साहित है - य आत्माऽपहतपाप्मा सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः - अन्य सर्व शोध को छोड़कर केवल तेरे निष्पाप आत्मा की शोध में लग जा। अन्य सर्व अभ्यास एवं शिक्षण को गौण कर के तूँ आत्मजिज्ञासा कर के, एवं आत्मज्ञान को प्राप्त करने का प्रयास कर। आत्मेत्येवोपासीत - शरीर, संपत्ति सत्ता... यह सब उपास्य नहीं है। उपास्य है केवल तेरी आत्मा। परोपकार, सदाचार, दान, दया यह सब आत्मोपासना के साधन है। आत्मानं लोकमुपासीत - तेरे जीवन का सार्थक्य और साफल्य इस में ही है, कि तूँ तेरे आत्मा की उपासना कर के। तेरे समय-शक्ति-बुद्धि-सामग्री का इससे श्रेष्ठ उपयोग और कोई भी नहीं।

शेरने तो सारा पर्दाफाश किया है। अब हमें बें बें करना या गर्जना करनी, वह हमारे हाथ की बात है। सम्भ्रान्त होना या भ्रम से मुक्त होना, यह हमारे अधीन है। नश्वर-क्षणिक-तुच्छ विषयो का चारा चरना, या आत्मरमणता के अद्भुत आनंद का स्वामी होना यह हमारी रुचि की बात है। उछल-कूद कर के ठेस-ठोकर खानी, या परमसुख के शिखर पर उर्ध्वारोहण करना.... निर्णय करने के लिये हम स्वतंत्र है। संसार एक ग्वाले की अदा से हमें भटकाये उस तरह भटकते रहना है? या आत्मज्ञान एवं आत्महितानुष्ठान के माध्यम से आत्मसाम्राज्य के सम्राट होने का हमारा जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त कर लेना? पसंद हमारी।

शेर की गर्जना तो हो चुकी, अब बारी है बच्चों की।

> आत्मा तब तक ही दुःखी है, जब तक उसने अपने ब्रह्मस्वरूप को पहचाना नही है

> एक स्वप्न आँखे खुलने पर समाप्त होता है और
> एक स्वप्न आँखे बंद होने पर समाप्त होता है
> स्वप्न तो स्वप्न ही।

> जब तक भ्रम है
> तब तक भ्रमण है

> परमानन्द का कन्द
> है साक्षीभाव